आत्मोपम्य दृष्टि

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जो जीव अपने समान अन्य जीवों को देखता है उसकी दृष्टि आत्मोपम्य दृष्टि होती है। आत्मोपम्य का अर्थ है– अपने समान सभी को मानना। सभी में चेतना का दर्शन करना। चेतना किसे कहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि चेतना को आत्मा या जीव कहते हैं। असंख्य चेतनामय परमाणुओं के पिण्ड को आत्मा कहा जाता है। आत्मा सुख–दुःख की अनुभूति करता है। जीव आत्म सदृश जीव का प्रजनन करता है। जड़ पदार्थ में प्रजनन की शक्ति नहीं होती। आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और सुख का खजाना है। पंचइन्द्रियों के विषय बाह्य जगत से आंतरिक जगत में आते हैं। उनका संवेदन आत्मा करता है। इन्द्रिय सुख के साथ दुःख जुड़ा रहता है। आत्मा में सुख ही सुख है। आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, अजर, अमर और अविनाशी तत्त्व है। आत्मा को छोड़कर अन्य पुद्‌गल तत्त्व अविनाशी है। आत्मा में रूप, वर्ण, रंग और गन्ध नहीं है। आत्मा में अव्याबाध सुख है। जन्म–मरण की परम्परा से आत्मा मुक्त है।

आत्मा सुख का भण्डार है। आत्मा आनन्दमय है। संसार की सभी वस्तुएं नाशवान है। शरीर भी आत्मा के साथ नहीं जाता। चेतना जब एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है तो कार्मण शरीर ही उसका सहायक होता है। कार्मण शरीर में कर्म रज चिपके रहते हैं। जो जैसा कर्म किये रहता हैं उसे दूसरे भव में वैसा ही रूप, रंग और शरीर मिलता है। चौरासी लाख जीव यौनियों में सभी प्राणी कर्म के कारण ही पुनर्जन्म को प्राप्त करते हैं। मानव के समान ही सभी प्राणियों में आत्मा है। आत्मा के स्तर पर कोई भेद नहीं है। मानव जीवन पाकर चेतना का विकास करना चाहिए। आनन्दमय चेतना की अनुभूति मानव को करनी चाहिए।

अध्यात्म का अर्थ है आत्मा में रहना। जीव और जगत् के भेद को जानना और मानना। संसार को ही सबकुछ मानकर न रहना। पारलौकिकता के बारे में चिंतन करना। इस संसार में मानव लौकिक और पारलौकिक जगत के विषय में चिंतन करता है। लौकिक से तात्पर्य इस लोक से

है जिसमें हम रहते है। सभी प्राणी इस लोक में ही अपनी जीवन लीला करते है। एक इन्द्रिय से लेक पंचेन्द्रिय प्राणी तक सभी जीव है। चेतना का स्तर सब में भिन्न–भिन्न है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो लौकिक और पारलौकिक जगत के विषय में सोचता है। धर्म कर्म करता है। अन्य प्राणी केवल इन्द्रिय के वशीभूत होकर के ही कार्य करते है। मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धितत्व है और वह विवेक से कार्य करता है। बुद्धि ही मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न करती है। आत्मा तो सब में है। सभी आत्माएं समान है। मानव ही आत्मचिंतन करता है। वेदों से लेकर के अधुनातन साहित्य तक के सभी ग्रंथ आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत के बारे में चिंतन करते है।

आत्मा का विवेचन दर्शन शास्त्र का प्रमुख विषय रहा है। जितने भी दर्शन है सभी ने आत्मा के बारे में चिंतन किया है और सत्य का साक्षात्कार करने का प्रयास किया है। आत्मा के स्वरूप के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। योगी लोग आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते है। भोगी लोग इस संसार को ही सबकुछ मानकर उसी में भ्रमण करते है। आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। इसकी प्राप्ति के बाद किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती। सब प्रकार के दोषों से रहित होने पर सम्यक् ज्ञान, ब्रह्मचर्य और सत्य के द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है। सम्यक् ज्ञान ही एक ऐसा आचार है जिसके द्वारा निखिल कर्मों का विलय किया जा सकता है। इस ज्ञान की उपलब्धि में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये सत्यानुष्ठान की महती आवश्यकता होती है। सत्य का अनुष्ठान और तपस्या के द्वारा ही सम्यक्ज्ञान की उपलब्धि होती है।

आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं। शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्राकट्य

उसी प्रकार होता है जैसे स्वच्छ कांच में प्रतिबिम्बोपलब्धि होती है। पुरुष या आत्मा को चेतन तत्त्व तथा प्रकृति को अचेतन या जड़तत्त्व कहा गया है। पुरुष के स्वरूप को बतलाते हुये यहां कहा गया है कि पुरुष नित्य, साक्षी, केवल, निस्त्रैगुण्य, माध्यस्थ उदासीन, द्रष्टा और अकर्त्ता है। पुरुष चेतन है।

चेतन ही विषयों का ज्ञाता तथा द्रष्टा होता है। इसे अचेतन नहीं प्राप्त कर सकता। आत्मा ही वह द्रव्य है जिसमें बुद्धि, सुख–दुःख, राग–द्वेष, इच्छा प्रयत्न आदि गुण रहते हैं। ये गुण शरीर के नहीं आत्मा के ही हो सकते हैं। आत्मा देह, इन्द्रिय आदि से भिन्न है, नित्य और व्यापक है। मन से उसका प्रत्यक्ष होता है तथा मैं जानता हूं, मैं करता हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं इत्यादि से आत्मा का अस्तित्त्व प्रकट होता है। जो व्यक्ति सबको समान समझता है, सबमें आत्मा का दर्शन करता है उसकी दृष्टि में सभी जीव समान होते हैं।